''छोड़ के प्रेम को कह दो कोई अफ़साना लिखे''

* डॉ0 संध्या सिंह

इस शीर्षक में बहस का मुद्दा बनने की पूरी क्षमता है। पर बात यहाँ शमशेर की हो रही है, शमशेर की कविता की हो रही है। कविता क्या है? कहाँ जन्म लेती है? कहाँ बसती है?आखिर कविता की ज़रूरत क्या है?और क्यों है?वह मरती क्यों नहीं? मृत्यु की घोषणा के बाद भी क्यों कफ़न से निकल चुपचाप आ खड़ी होती है?..... इन प्रश्नों के उत्तर शमशेर की कविताएं देती हैं, कविताओं के मध्य का मौन देता है और शमशेर की कविता की रूमानियत के समानान्तर चलता बेआवाज़ बेधता दर्द देता है।

कविता अगर शास्त्र नहीं, संवेगों की अभिव्यक्ति है तो जाहिर है, हर एक के संवेग उसकी निजी सम्पदा हैं। यह निजत्व किस बिन्दु पर अपना विलय करता है, कि उसकी निजता सारगर्भित होकर मानवीय करूणा से एकाकार हो जाती है। यही बिन्दु वह प्रस्थान बिन्दु बनता है जो अधकचरी स्वप्न–जीविता, सतही भावुकता, वायवीय कल्पनाशीलता और रूमानी एकालाप को एक वृहत्तर फलक प्रदान कर उसे आत्मान्वेषण के मार्ग से उपलब्धि के लक्ष्य की तरफ बढ़ाता है – जो मन से मानव और मानव से मानवता में पर्यवसित होता है।

ऐसा होता है, पर यह कोई अवश्यम्भावी फार्मूला नहीं है। शमशेर के साथ तो बिल्कुल नहीं है। वह किसी भी पैटर्न में फिट नहीं बैठते। उनके शब्द मौन हो जाते हैं और उनका मौन बहुत कुछ कहता है बात दोनों को मिलाकर बनती है – कहा – अनकहा।

1980 में प्रकाशित ''उदिता'' में शमशेर कहते हैं – ''उस ज़माने में (1941 से 47 के बीच) मैने अपनी घोर वैयक्तिक अतार्किक भावुकता, रोमानी आदर्शवाद आदि से रचनात्मक संघर्ष शुरू कर दिया था और मार्क्सवादी मॉडल प्रबल रूप से मुझे अपनी ओर खींच रहे थे पर मेरी असली ज़मीन तो रोमानी ही थी, रोमानी ही बनी रही''[1]

* विभागाध्यक्ष, हिन्दी, डी0ए0वी0पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ।

कैसे हुआ यह ! जो जीवन शमशेर ने जिया और जिस युग में उनकी कविता जन्मी – बढ़ी, वह प्रेम से अनासक्ति का युग था, प्रगतिशीलता और नई कविता का युग था। मोहभंग और विद्रोह का युग था, शोषण की यातना का युग था, पीड़ा और वेदना का युग था। फिर कैसे हुआ यह!

पर क्या शमशेर की रूमानियत का अंतस्तत्व वेदना नहीं है?क्या प्रेम – वेदना – पीड़ा की यात्रा करूणा तक नहीं जाती ? क्या करूणा का मूलस्वभाव और प्रगतिशीलता का मूल भाव दोनों मानव को, जीव मात्र को केन्द्र में रखकर नहीं चलते!

आलोचक और पाठक तो सतह पर दिखते इस अन्तर्विरोध की भूलभुलैया में उलझते ही रहे हैं पर निःसन्देह शमशेर के पास वह संजीवनी बूटी रही है जो विपरीत धर्मी समय में भी प्रेम के अंखुए को जीवित रख सकी। यह प्रेम किसके लिये जाहिर है, साहित्य–कविता के केन्द्र में अवस्थित मानव के लिये। इस मानव से क्या प्रेम को पृथक किया जा सकता है! मानव का अस्तित्व क्या सिर्फ एक दैहिक संयोग की परिघटना है। एक स्त्री और एक पुरूष का परस्पर आकर्षण और प्रेम क्या सिर्फ जैविक क्रिया – प्रतिक्रिया, कार्य–कारण से परिभाषित हो जाता है?

सम्पूर्ण वाङ्मय, विशेष रूप से रस का साहित्य अपने अपने तरीके से सदियों से इस प्रश्न से जूझ रहा है। आज क्लोनिंग और सैरोगेसी के युग तक पहुँच कर भी हम क्या वहीं नहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे।

शमशेर के लिये प्रेम ही सत्य है, बाकी सब मिथ्या –

''तुमको पाना है अविराम
सब मिथ्याओं में
ओ मेरी सत्य!'' [2]

प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं – ''समय और जीवनानुभव जिस बिन्दु पर मिले थे उनसे कहीं हटकर था उनके भीतरी भूकम्प का केन्द्र। वे वहीं से परिचालित थे, जहाँ से अमृत ही नहीं विष भी निकलता है। प्रेम सागर के

मंथन से जो ज़हर निकलता है, वह शमशेर ने जिया भी है और पिया भी है। यही वह पीड़ा है जो उनके काव्य में अपार करुणा में बदली है। तमाम विषमय को भोगते हुए उसके विरुद्ध आंतरिक गहन विद्रोह के रूप में।''[3]

''रोमानियत एक आवेगात्मक अनुभूति है। शमशेर में आवेग का यह प्रेरक और उत्साहपूर्ण रूप देखें, जहाँ कवि धनीभूत पीड़ा के आवरण चीर कर ज्योति के निःशंक आकाश में उतर कर मोह, प्रेम और भय के कुअंकों को मिटा देने का आह्वान करता है :

''खोल, उठा ज्योति के मयंक
अंक मिटा भाल के, निशंक!
मोह सत्य भौंह बंक
लौह सत्य प्रेम पंक
..... अन्यथा व्यथा, व्यथा, वृथा.....
है अनादिः आदि रंक – शून्य अंक
तोल उठा वृक्ष के अशंक भाव
की अथाहता''

(–धनीभूत पीड़ा / एक सिम्फनी / कुछ कविताएं)[4]

यहाँ शमशेर की संवेदना का धरातल, उनकी आन्तरिक रागात्मकता की रौशनी में उनकी रूमानियत को, रूमानियत की सामान्यीकृत अवधारणा से अलग पहचानना होगा। शमशेर ने व्यक्तिगत परिस्थितियों के सत्य को युग–सत्य पर कभी भी आरोपित नहीं किया। इसीलिये वह एक साथ सामाजिक यथार्थ को भी साध पाए और अन्तर्विषयी भी रह पाए। उनके उद्वेग की अनुभूत गहराई, उनकी निराली संप्रेषण क्षमता उन्हें वहाँ ला खड़ा करती है जहाँ पाठक के साथ आलोचक भी पुनर्पाठ की आवश्यकता स्वीकारता है।

उनकी अनायास, अयत्नज रूमानियत, मोहभंग के लम्बे खिंचते चले जा रहे युग के बीच सार्थक मोह की, प्रेम की पुनर्रचना करने की तरफ कदम बढ़ाती है। वह इमीटेट नहीं करती, रीक्रिएट करती है।

''धरो शिर
हृदय पर
वक्ष वहि्न से , – तुम्हें
मैं सुहाग दूँ
चिर सुहाग दूँ।
प्रेम – अग्नि से – तुम्हें
मैं सुहाग दूँ!
विरह–आग से –तुम्हें
मैं सुहाग दूँ।''

(गीत / कुछ और कवितायें)5

विरह – आग से चिर सुहाग देने वाला यह गीत, सृष्टि के अनादि संगीत का देहान्तरण ही तो है। नाद के साथ अर्थ में पर्यवसान पाने की यात्रा उसे जिन आहत सार–ध्वनियों से जोड़ती है वही तो शमशेर का सत्य है क्योंकि उनके लिए न जगत मिथ्या है न मानव। शमशेर को बहुत जानने वाले और शमशेर को थोड़ा–सा पढ़ने वाले, दोनों उनके एक साथ व्यक्ति–मन और जन–मन निबाहने की अयत्नज क्षमता के कायल है। शमशेर स्वतंत्र हैं मोह को भुगतते हुए भी मोह से और मोह भंग की पीड़ा झेलते हुए भी पीड़ा से, क्योंकि वह अपनी निजी पीड़ा को मनुष्यता के दर्द में रूपान्तरित करने की राह पर बढ़ चुके हैं।

मुक्तिबोध को ''उस भवन में जाने से डर लगता है जिसे शमशेर की आत्मा ने अपनी अभिव्यक्ति के प्रभाव से अपने हाथों तैयार किया है। – उसकी गम्भीर प्रयत्नसाध्य पवित्रता के कारण''[6]

क्या यह पवित्रता प्रयत्नसाध्य है? चुनौती दरअसल यही है इस रूमानी कवि के मूल्यांकन की।

शमशेर की रूमानियत की जड़ें कहाँ हैं? उनके जीवन में? वहाँ तो सिर्फ पीड़ा है, राग का उल्लास नहीं। पर उनका राग एकांतिक नहीं।

''जब प्रेम और मर्सिया को धिक्कारा जाता था, उन्होंने प्रेम और

मर्सिये डूब कर लिखे–बेधड़क, क्योंकि वे पहचानते थे कविता का मुक्त और बहुआयामी स्वभाव वे वाद–विवाद में न पड़कर शुद्ध मानवीय कविता लिख रहे थे – युगबोध की, मनुष्य बोध की, आत्म बोध की।

..... जहाँ उन्हें आत्मा का ताल–मेल लगा है, उन्होंने गीत और छंदोबद्ध कविताएं भी लिखी हैं। जबकि उस युग में छंद तोड़े जा रहे थे, गद्य की लय पर बहसें हो रही थीं लेकिन इसकी परवाह न करते हुए शमशेर ने ''निंदिया सताये मोहे संझही से सजनी'' जैसे गीत, सॉनेट, ग़ज़ल, छंदबद्ध कविता, रूबाई आदि सब लिखे''[7]

शमशेर दुरूह भी हैं और सरल भी दुरूह इसलिए कि वह अपनी रौ में लिखते हैं ''जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे रुचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपना लिया''[8] और सरल इसलिए कि वह किसी भी वाद या शास्त्र से परे खड़े होकर लिख रहे हैं। निस्पृह ––– समभाव से ––– विचार और अनुभूति दोनों के वाहक –– वहाँ रूमानी कुहेलिका है तो अवसाद का अवगुन्ठन भी है। स्वप्नदर्शी अन्वेषण है तो मोहाविष्ट अन्तराल भी है।

यह रूमानियत, यह दर्द, यह सामाजिक सरोकार, यह मार्क्सवाद, यह गाँधीवाद, यह प्रगतिशील चेतना, यह प्रयोगधर्मिता, यह अनूठा शिल्प, आग और पानी साथ–साथ साधना, और सब अपनी शर्तों पर, नितान्त स्वान्तः सुखाय पर आत्ममुग्धता, आत्मदया, अश्रुविगलित मसीहाई प्रलाप से कोसों दूर।

जैसा जीवन शमशेर ने जिया, ठोस कठोर, निरपेक्ष यथार्थ का, सर्वहारा का (तक़रीबन) उसके बावजूद उनकी अन्तर्मुखी चेतना, उनकी स्वप्नदर्शिता को निरन्तर अन्वेषण मुखी बनाती रही, उनकी व्यक्तिगत वेदना का फैलाव सम्पूर्ण सृष्टि में हुआ, करूणा रूप में ।

1980 में लिखी 'उदिता' की भूमिका में स्वयं उनका कहना है –

''प्रेम की भावुकता ने जो बीज बोया है, वह मैं देखता हूं कि अकारथ नहीं गया, क्योंकि पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफरत और शान्ति की

समस्याओं से दिलचस्पी – ये सभी बातें उसी से धीरे–धीरे मेरे अन्दर पैदा हुई।''[9]

शमशेर बुद्ध के निकट हैं। उनकी वेदना का पर्यवसान अध्यात्म के आत्म यानि मानव की आत्मोपलब्धि की चेतना में हुआ है। इसी यात्रा का महत्वपूर्ण और अवश्यम्भावी पड़ाव है प्रेम।

इस प्रेम को समझने – देखने की दृष्टि निःसंग होनी चाहिये। बीच में खड़े हो कर सीधी नजर से, वरना पूर्वाग्रहों के अन्तर्विरोध पीछा नहीं छोड़ेंगे।

शमशेर की रूमानी कविताएं मज्झिम निकाय की कवितायें हैं – न बेवजह ढकी छिपी, न बेकारण ध्यान आकर्षित करने के लिये उघड़ीं बहुत ढकी छिपी रूमानी कविताएं भी बाहरी दबाव में लिखी जाती हैं, और बहुत खुली उघड़ी विकृत कविताएं भी किसी न किसी दबाव में ही लिखी जाती हैं। दबाव चाहे व्यक्तिगत मानसिक, परिस्थितिजन्य हो या फिर सायास चर्चा पाने की अदम्य तृष्णा का हो। आज की विजुअल भाषा का प्रयोग करें तो टी0 आर0 पी0 बढ़ाने का दबाव भी कविताओं के नैसर्गिक प्रेम को विकृत जुगुप्सा जगाती अंधेरी गुफा में ढकेल रहा है।

शमशेर की रूमानी कविताएं मध्यम मार्ग की कविताएं हैं। मध्यम मार्ग व्यक्ति का मूल स्वभाव होता है। प्रेम मानव का मूल स्वभाव है। घृणा और क्रोध को उपजने के लिए कारण की आवश्यकता होती है। प्रेम अनायास अयत्नज उभर आता है। और इसके समानान्तर दबे पाँव आता है दर्द।

''संसार में दुखों के अनेक रूप होते हैं, दुख पहुँचाने के भी अनेक रूप होते हैं, मनुष्य को जोड़ने उसके जख़्मों पर मरहम लगाने के भी अनेक रूप होते हैं, प्रेम के भी अनेक रूप होते हैं। शमशेर की इस व्यापक यात्रा को गौर से देखें। अपने जीवन के सारे दुख–दर्द को कवि ने मनुष्यता के दुख दर्द में रूपान्तरित कर दिया है, और उसे वृहत्तर मानवीय तथा नैसर्गिक जीवन की गहरी कलात्मक भाषा दी है।''[10]

''जो लोग शमशेर में प्रेम और सौन्दर्य की स्वप्निल दुनिया ही देख पाते हैं, उनके लिये शमशेर का यह शेर नज़्र है :

''मेरी बातें भी तुझे ख़ाबे – जवानी–सी है,
तेरी आँखों में अभी नींद भरी है शायद।''

(कुछ शेर / कुछ और कविताएं)11

सन्दर्भ –

1. शमशेर बहादुर सिंह–प्रभाकर श्रोत्रिय–पृ–26–साहित्य अकादमी
2. तुमको पाना है अविराम – काल तुझसे होड़ है मेरी – शमशेर बहादुर सिंह – राजकमल प्रकाशन–दिल्ली–1990
3. शमशेर बहादुर सिंह–प्रभाकर श्रोत्रिय–पृ.40–सा0अ0
4. वही–पृ047
5. कुछ और कविताएं–शमशेर–राजकमल प्र0–दिल्ली 1961
6. चालीसोत्तर कविता के हीरक हस्ताक्षर–भवदीय प्रकाशन अयोध्या–पृ0 218
7. शमशेर बहादुर सिंह–प्रभाकर श्रोत्रिय–पृ.72–सा0अ0
8. कुछ और कविताएं–शमशेर–भूमिका–राजकमल–1961
9. उदिता–शमशेर–भूमिका–अभिव्यक्ति का संघर्ष–वाणी प्रकाशन–दिल्ली–1980
10. शमशेर बहादुर सिंह–प्रभाकर श्रोत्रिय–पृ.29–सा0अ0
11. वही–पृ0 43